जैन शिक्षा बनाम आधुनिक शिक्षा

—विजयकुमार, शोध छात्र
दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

मानव-जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा का प्रारम्भ कब से हुआ यह निश्चित कर पाना उतना ही कठिन है जितना कि मानव की उत्पत्ति का। हाँ, इतना जरूर कहा जा सकता है कि जबसे मानव है तब से शिक्षा भी है। बच्चा जन्म लेता है और जन्म से मृत्यु पर्यन्त वह हमेशा कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। यह 'सीखना' ही शिक्षा है। शिक्षा शब्द 'शिक्ष' धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ होता है—**'सीखना और सिखाना।'** शिक्षा के लिए ज्ञान, विद्या आदि शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। परन्तु जहाँ तक मैं समझता हूँ, 'शिक्षा' और 'विद्या' में अन्तर है। शिक्षा एक प्रक्रिया है जिससे समाज का विकास होता है, प्रगति होती है। किन्तु विद्या के अन्तर्गत **चौर्य विद्या** भी आती है जिससे व्यक्ति या समाज की प्रगति की अपेक्षा उसके विकास में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। यद्यपि मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार विद्या ही है। कहा भी गया है—**विद्या ददाति विनयम्।**

जैन ग्रन्थ आदिपुराण में विद्या के महत्व को प्रकाशित करते हुए कहा गया है—विद्या ही मनुष्यों को यश प्राप्त कराने वाली है, विद्या ही पुरुषों का कल्याण करने वाली है, विद्या ही सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली है, कामधेनु है, विद्या ही चिन्तामणि है, विद्या ही धर्म, अर्थ और कामरूप फल से सहित सम्पदाओं की परम्परा उत्पन्न करती है। विद्या ही मनुष्यों का बन्धु है, विद्या ही मित्र है, विद्या ही कल्याण करने वाली है, विद्या ही साथ-साथ जाने वाला धन है और विद्या ही सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है। अतः कन्या या पुत्र दोनों को समान रूप से विद्योपार्जन कराना चाहिए।[1]

---

१ इदं वपुर्वयश्चेदमिदं शीलमनोदृशम्।
विद्यया चेद्विभूष्येत् सफलं जन्मवामिदम्॥
विद्यावान् पुरुषो लोके संमतिं याति कोविदैः।
नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिम पदम्॥
विद्या यशस्करी पुंसां विद्या श्रेयस्करी मता।
सम्यगाराधिता विद्यादेवता कामदायिनी॥
विद्या कामदुहा धेनुर्विद्या चिन्तामणिर्नृणाम्।
त्रिवर्गफलितां सूते विद्या संपत्परम्पराम्॥
विद्या बन्धुश्च मित्रं च विद्या कल्याणकारकम्।
सहयापि धनं विद्या, विद्या सर्वार्थसाधनी॥
तद् विद्याग्रहणं यत्नं पुत्रिके कुरुतं युवाम्।
सत्संग्रहणकालोऽयं युवयोर्वर्त्ततेऽधुना॥
—१६/९७-१०२, आदिपुराण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन शिक्षा के उद्देश्य

प्राचीनकाल में बालकों का पूर्ण शिक्षा-क्रम चरित्र शुद्धि पर आधारित था। काय-मन और वचन शुद्धि पर विशेष बल दिया जाता था। आचार-व्यवहार की शिक्षा के साथ-साथ बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक विकास की भी शिक्षा दी जाती थी। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि ज्ञानार्जन के मुख्य अंग थे। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का उद्देश्य ही था—चरित्र का संगठन, व्यक्तित्व का निर्माण, संस्कृति की रक्षा तथा सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों को सम्पन्न करने के लिए उदीयमान पीढ़ी का प्रशिक्षण।[1]

जैन शिक्षा का लक्ष्य बताते हुए डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने कहा है—आन्तरिक दैवी शक्तियों की अभिव्यक्ति करना, अन्तर्निहित महनीय गुणों का विकास करना तथा शरीर, मन और आत्मा को सबल बनाना, जगत् और जीवन के सम्बन्धों का ज्ञान, आचार, दर्शन और विज्ञान की उपलब्धि करना, प्रसुप्त शक्तियों का उद्बोधन, अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण से भावात्मक अहिंसा की प्राप्ति, कर्तव्य पालन के प्रति जागरूकता का बोध तथा विवेक दृष्टि की प्राप्ति आदि जैन शिक्षा के उद्देश्य हैं।[2] अभिप्राय यह है कि जैन शिक्षा शास्त्र के अन्तर्गत आत्मसाक्षात्कार, सत्य की खोज, चरित्र निर्माण, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का निर्माण, सामाजिक एवं धार्मिक कर्तव्यों का पालन करना आदि शिक्षा के उद्देश्य समझे जाते थे।

आधुनिक शिक्षा के उद्देश्य

आज की शिक्षा का उद्देश्य मात्र धनोपार्जन ही रह गया है। वह शिक्षा जो मानव को मानव ही नहीं अपितु मुक्त बनाने वाली थी, जो दुःखों से मुक्तकर शाश्वत सुख प्रदान करने वाली थी, आज केवल धन और आजीविका का एकमात्र साधन रह गया है। इस यान्त्रिक युग में शिक्षा भी यान्त्रिक हो गयी है। जिस प्रकार यन्त्र बिना सोचे-समझे अपना कार्य करता रहता है उसी प्रकार वर्तमान युग का विद्यार्थी भी किताबों को अक्षरशः रटकर डिग्री हासिल कर नौकरी प्राप्त करना ही शिक्षा का उद्देश्य मान बैठा है। यह भूल न तो विद्यार्थियों की है और न शिक्षकों की ही बल्कि गलती उस समाज की है जिसने शिक्षा से ज्यादा धन को महत्व दे रखा है। आज जो शिक्षा समाज में दी जा रही है वह विद्यार्थी को डॉक्टर, इंजीनियर आदि बनाने में तो सक्षम है परन्तु मानव को सच्चा इन्सान नहीं बना पा रही है। क्योंकि शिक्षा के साथ सेवा और श्रम का भाव व्यक्ति के मन में उत्पन्न नहीं हो रहा है। चारों ओर स्वार्थता का बोलबाला है। स्वार्थपूर्ति के लिए भयंकर से भयंकर पाप किये जा रहे हैं। परिणामतः मनुष्य की नैतिकता गिरती जा रही है।

ऐसी स्थिति में हमारी केन्द्रीय सरकार ने नई शिक्षा नीति (१०+२+३) निर्धारित किया है जिसका मुख्य उद्देश्य सबको नये रोजगार के अवसर प्रदान करना तथा देश को इक्कीसवीं सदी के मध्य संसार के अन्य देशों के समकक्ष खड़ा करना है। इस नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत त्रिभाषा फार्मूला पारित किया गया है—(क) राष्ट्रभाषा हिन्दी, (ख) विदेशी भाषा, (ग) प्रादेशिक भाषा। इस त्रिभाषा फार्मूला में संस्कृत, प्राकृत और पालि को कोई स्थान नहीं दिया गया है। परिणा-

---

१. Infusion of spirit of a piety and religiousness, formation of character, development of personality, inculcation of civic and social duties, promotion of social efficiency and preservation and spread of national culture may be described as the chief aim and ideal of ancient Indian education. —Altekar, Education in Ancient India, P. 8—9

२. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० २५९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतः संस्कृत, प्राकृत और पालि जिनमें भारतीय संस्कृति का मूल स्वरूप निहित है, नष्ट हो जायेगा।

जैन शिक्षण प्रणाली—

जैनकालीन शिक्षा मन्दिरों, आश्रमों और मठों में दी जाती थी। शिक्षा देने वाले आचार्य प्रायः समाज से दूर वनों में रहते थे, जो त्यागी, तपस्वी, ब्राह्मण या साधु हुआ करते थे। शिक्षा का माध्यम संस्कृत, प्राकृत, पालि तथा प्रान्तीय भाषाएँ थीं।

जैन शिक्षण प्रणाली में जब बालक पाँच वर्ष का हो जाता है तब उसका लिपि संस्कार करने का विधान है।[1] जिसके अन्तर्गत बालक घर में अ, आ, इ, ई आदि वर्ण का ज्ञान तथा अंक आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। तत्पश्चात् जब बालक आठ वर्ष का हो जाता है तब उसकी उपनीति क्रिया[2] होती है जिसके अन्तर्गत केशों का मुण्डन, मूंज की मेखला, सफेद वस्त्र, चोटी सात लर का यज्ञोपवीत धारण करना तथा जिनालय में पूजन करना, भोजन के लिए भिक्षावृत्ति तथा ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन करने का विधान है। ये सभी नियम प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अनिवार्य माने गए हैं चाहे वह निर्धन कुल का हो या राजकुल का, सभी को जैन शिक्षणप्रणाली में समान भाव से देखा जाता था। क्रिया के पश्चात् विद्यार्थी गुरुकुल में होता था। उपनीति क्रिया के पश्चात् व्रतचर्या[3] संस्कार का विधान है जिसमें विद्यार्थी का एक ही लक्ष्य रहता है संयमित जीवनयापन करते हुए विद्याध्ययन करना। चौथा और अन्तिम संस्कार है—व्रतावरण क्रिया।[4] जो समस्त विद्याओं के अध्ययन के पश्चात् होती है। यह संस्कार बारह अथवा सोलह वर्ष बाद गुरु के साक्षीपूर्वक जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके करने का विधान है।

अतः यह कहा जा सकता है कि जैन शिक्षण प्रणाली में विद्यार्थी को विघ्न-बाधाओं से लड़ना तथा दुर्गुणों का त्याग कर सद्गुणों को आत्मसात् करना सिखाया जाता था। गुरु-शिष्य के सम्बन्ध प्रेमपूर्ण थे। विद्यार्थी भी अपने गुरुओं के प्रति सम्मान और श्रद्धा के भाव रखते थे। सन्तोष, निष्कपट व्यवहार, जितेन्द्रियता और शास्त्रानुकूल प्रवृत्ति आदि गुरुकुलवास के मुख्य प्रयोजन थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनशिक्षण प्रणाली में विद्यार्थी को विनयशील, सदाचारी, मृदुभाषी आदि बनाने के साथ ही चरित्र-निर्माण पर विशेष बल दिया गया है। जिसका आज की शिक्षण प्रणाली में सर्वथा अभाव पाया जाता है।

आधुनिक शिक्षण-प्रणाली—

आधुनिक शिक्षण प्रणाली तत्कालीन भारत-सचिव लार्ड मैकाले द्वारा मानी जाती है। जिसकी नींव मैकाले ने अपने परिपत्र द्वारा सन् १९३५ में डाली थी। जिसका उद्देश्य था भारत के उच्च तथा मध्यम वर्ग के स्तर को ऊँचा उठाना। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने मदरसे खोले जिसके परिणामस्वरूप भारतीय केवल रंग के भारतीय तथा मन से यूरोपीय सभ्यता के अनुयायी बनकर रह गये। शिक्षा का धर्म और नैतिकता से सम्बन्ध टूट गया तथा शिक्षा का क्षेत्र इहलोक तक ही सीमित होकर रह गया।

अंग्रेजी शिक्षण-प्रणाली का ही दुष्परिणाम है कि जो शिक्षा और संस्कार बालक को मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पा रहा है। आज की शिक्षा अव्यावहारिक तथा अधूरी है जो समाज को, देश को बेरोजगारी की ओर अग्रसर कर रही है। इस प्रणाली ने छात्र को किताबी कीड़ा तो बना दिया

---

१ ततोऽस्य पञ्चमे वर्षे प्रथमाक्षरदर्शने। ज्ञेयः क्रियाविधिर्नामा लिपि संख्यान् संग्रह। —आदिपुराण ३८/१०२

२ वही—३८/१०४

३ वही—३८/११०-११३

४ वही—३८ | १२३-१२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है लेकिन विषय का मर्मज्ञ नहीं बना सकी। यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि ये आधुनिक शिक्षा नैतिकता, सहनशीलता, चरित्र-निर्माण, त्याग, तप, अनुशासन तथा विनम्रता आदि गुण की दृष्टि से सर्वथा असफल रही है। आज न वे अध्यापक हैं, न वह छात्र और न वह शिक्षण केन्द्र ही, जहाँ गुरु और शिष्य दोनों पिता-पुत्र के समान रहते थे। समय के अनुकूल हर चीज में परिवर्तन होता रहता है। अतः यह कहा जा सकता है कि समय और युग के अनुकूल मानव समस्या, आवश्यकता और उनकी आकांक्षाओं के अनुरूप शिक्षा का आयाम भी बढ़ता जा रहा है।

आज के इस विज्ञान और तकनीकी युग में हम शिक्षा को तीन श्रेणियों में विभाजित करके देख सकते हैं—(क) उच्चतम, (ख) मध्यम और (ग) निम्न। उच्चतम श्रेणी में चिकित्सा, आभियान्त्रिकी, कम्प्यूटर आदि की शिक्षा मानी जाती है। मध्यम श्रेणी में कला, वाणिज्य आदि की शिक्षा तथा निम्न श्रेणी में संस्कृत, साहित्य, वेद-वेदांग आदि की शिक्षा मानी जाती है।

इस प्रकार हम जैन-शिक्षा और आधुनिक शिक्षा पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि जैन शिक्षा में इहलौकिकता के साथ-साथ पारलौकिकता की भी शिक्षा दी जाती थी वहीं आज की शिक्षा जिसे आधुनिक शिक्षा के नाम से जाता है, में केवल इहलौकिकता का ही समावेश है। यद्यपि वर्तमान परिवेश में अब प्राचीन शिक्षण प्रणाली नहीं अपनायी जा सकती किन्तु शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति के अनुकूल शिक्षा को बनाया जा सकता है। इस क्षेत्र में पहल करने के लिए सर्वप्रथम बालक को समाज के प्रति संवेदनशील बनाना होगा। जिसके लिए परिवार और विद्यालय के बीच सार्थक संवाद होना आवश्यक है। साथ ही प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक समाज हितोपयोगी आध्यात्मिक ज्ञान की शिक्षा का होना आवश्यक है। परन्तु आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता का भी सामंजस्य होना चाहिए। जैसा कि जैन शिक्षण प्रणाली में है। इतना ही नहीं प्रत्येक शिक्षार्थी को रुचि के अनुकूल जीविकोपार्जन के लिए कुशल बनाया जाए।

पत्राचार का पता—
विजयकुमार जैन, शोध छात्र,
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
आई. टी. आई. रोड, वाराणसी–५

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थम्भा कोहा पमाएणं रोगेणालस्सएण य॥
—उत्तरा. ११/३

जिस व्यक्ति में अहंकार अधिक है—गर्व में फूला रहता हो, बात-बात में क्रोध करता हो, शरीर में आलस्य भरा रहता हो, किसी प्रकार की व्याधि अथवा रोग से ग्रस्त हो, जो शिक्षा प्राप्ति में उद्यम अथवा पुरुषार्थ न करे—ऐसे व्यक्ति को शिक्षा की प्राप्ति नहीं होती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org